विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३० | वैशाख पूर्णिमा | १३ मई १९८७ | वर्ष १६ अंक ११

धम्म वाणी

बाहु सच्चञ्च सिप्पञ्च विनयो च सुसिक्खितो ।
सुभासिता च या वाचा एतं मङ्गलमुत्तमं ।।
मङ्गलसुत्त–४

अनेक विद्याओं को अर्जित करना, शिल्प कलाओं में निपुण होना, विनय अनुशासन में सुशिक्षित होना, और वार्तालाप में सुभाषी होना . . . ये उत्तम मंगल हैं ।

मन की सफाई - विपश्यना पद्धति से

–रणजीत सिंह कूमट

शरीर या कपड़ा जरा भी मैला हो जाय, हम तत्काल उसे पानी या साबुन का प्रयोग कर साफ कर देते हैं । जो साफ वातावरण में रहने के अभ्यस्त हो गये हैं उनको जरा भी गंदगी नहीं सुहाती । परन्तु क्या हम यही बात मन की गन्दगी पर लागू करते हैं? क्या मन मैला होते ही सफाई की व्यवस्था करते हैं ? क्या साफ मन रखने के अभ्यस्त हो गये हैं या मन के मैले होने का पता ही नहीं लगता ? या पता लग भी जाता है तो क्या सफाई का कोई साधन उपलब्ध है ?

शरीर की ऊपरी सफाई का ध्यान भी तभी आता है जब सफाई के वातावरण में रहने के अभ्यस्त हो गये हों । जो लोग बालपन से गंदगी में ही रहते हैं या रोज स्नान आदि के अभ्यस्त नहीं होते उनको गंदगी या मैल का आभास उतना जल्दी नहीं होता जितना सफाई में रहने वाले व्यक्ति को होता है। गंदी गली व गंदे माहौल में रहने वाले व्यक्ति को गली की गंदगी का एहसास इतना जल्दी नहीं होगा जितना एक साफ वस्ती से आने वाले व्यक्ति को उस गंदी गली का होगा ।

यही बात मन की गंदगी पर लागू होती है । जब तक स्वस्थ व साफ मन क्या है? इसका अहसास न हो, मन गन्दा कब हुआ? और कब साफ करने की आवश्यकता है? इसका अहसास भी जल्दी नहीं होगा । लेकिन जो व्यक्ति एक बार साफ मन की स्फुरणा व सुख से परिचित हो जायेगा वह मन को साफ रखने की आवश्यकता को महसूस करेगा ।

आज के वातावरण में बाहरी सफाई पर तो काफी जोर दिया जाने लगा है परन्तु आन्तरिक या आध्यात्मिक सफाई पर लोग पहले से अधिक गफलत में रहने लगे हैं । मन की सफाई की कोई बात ही नहीं करता । मन की समस्या तब प्रस्तुत होती है जब यह काफी विकृत होकर शरीर पर बीमारी के रूप में प्रकट होती है या मनोवैज्ञानिक समस्या बनकर पागलपन की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है । यह सब विकृति के उग्र रूप हैं । इस सीमा तक पहुंचने से पहले ही मन को स्वस्थ रखने की व्यवस्था होनी चाहिए ।

इससे पहले कि मन की सफाई की बात करें, प्रश्न यह उठता है कि मन मैला कैसे होता है? और मन मैला होने का पता कैसे लगता है ? व्यक्ति यदि बाहरी वातावरण से नजर हटाकर क्षण भर भी अन्दर झाँकेगा तो उसे इन प्रश्नों का उत्तर आसानी से मिल जायेगा । परन्तु यदि आदत केवल बाहर देखने की बना ली और अन्दर झाँकने का प्रयास ही नहीं किया तो इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा । बाहर की गन्दगी तो दूसरे व्यक्ति भी इंगित कर देंगे परन्तु मन की गन्दगी का पता तो स्वयं को ही लगाना होगा। स्वयं ही मन के मैलेपन को आकेंगे और स्वयं ही सफाई कर सकेंगे ।

स्थूल रूप से भी देखें तो मन की व्याकुलता मन के विकार या गन्दगी का लक्षण है । मन में विकार आता है तो मन व्याकुल होता है । मन में क्रोध आया तो मन व्याकुल होगा । क्रोध का असर शरीर पर भी होता है– धड़कन बढ़ती है, रक्तदाब बढ़ता है, स्पन्दन बढ़ती है आदि । क्रोध से शरीर व मन दोनों पर व्याकुलता का असर होता है । इसी तरह जब मन कपट करता है या लालच करता है तो मन में व्याकुलता आती है । परन्तु कई बार हम इन लक्षणों को दरगुजर करते हैं, लापरवाही बरतते हैं व मन की व्याकुलता व मन के विचारों को दबाते हैं । धीरे धीरे मन की सूक्ष्म स्फुरणाओं को पहचानना भूल जाते हैं । फिर तो स्थूल बीमारी के रूप में जब लक्षण प्रकट होते हैं तब पता लगता है कि मन भी बीमार है । लेकिन उस वक्त भी मन की बजाय शरीर का ही इलाज करते हैं । जब ऊपरी दवाइयाँ कुछ नहीं कर पातीं तब शायद मन को स्वस्थ करने की बात सोचने का अवसर आता है ।

कहने में आता है "मन स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ है" परन्तु इस उक्ति पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। बल्कि इससे उल्टी उक्ति पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है– "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन बसता है।" इसीलिये शरीर पर विशेष ध्यान देते हैं, मन पर नहीं। मन में उठने वाले विचारों व स्फुरणाओं की ओर ध्यान न देकर शरीर को जो प्यारा लगता है उस पर ध्यान देते हैं। शरीर की इन्द्रियों को जो चीज अच्छी लगती है उसे प्राप्त करने या संजोने में सारी शक्ति लगा दी जाती है। इसके लिये क्रोध, छल-कपट भी करना पड़े तो करते हैं और इससे मन में विपरीत विचार या व्याकुलता भी आती है तो उसकी अवमानना करते हैं। जो शरीर को या शरीर की इन्द्रियों को प्रिय है उसी पर विशेष ध्यान देते हैं। शरीर की इन्द्रियों के सुखानुभव की प्राप्ति में मन की अवहेलना करने से मन व्याकुल या बीमार रहने लगता है और बाद में मन की व्याकुलता शरीर को बीमार करती है।

उदाहरण के लिये किसी मनुष्य ने सुन्दर स्त्री को देखा और उसमें मुग्ध हो गया। आंखों के इस सुख को पाने के लिये पुनः पुनः प्रयास करता है। इसी को आगे प्राप्त करने के लिये स्त्री को अपने पास लाने की कोशिश करता है। उस वक्त पता भी लगे कि पराई नार है तो सामाजिक क्लेश या झगड़े की परवाह भी नहीं करता और इसके लिये लड़ने आदि का भी संकल्प कर लेता है। बड़े बड़े युद्ध भी स्त्री के पीछे हो गये हैं। यह सब क्यों ? केवल शरीर के इन्द्रिय सुख के पीछे। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जिसमें कानों के सुख या जीभ के सुख के लिये अच्छे और बुरे की सब सीमा छोड़ कर छल-कपट, हिंसा, आदि का उपयोग किया गया है।

धन संग्रह तो सबसे बड़ी बीमारी है। मनुष्य के दिमाग में यह बात बैठ जाती है कि धन संग्रह ही जीवन का लक्ष्य है, धन ही सब कुछ है। इसी के लिये मिलावट, गलत तोल, छल-कपट, हिंसा, रिश्वतखोरी, तस्करी सब कुछ करता है। पिता का धन जल्दी प्राप्त हो इसके लिये पुत्र पिता की हत्या भी कर देता है। भाई भाई में झगड़े हो जाते हैं और एक दूसरे के जानी दुश्मन हो जाते हैं। ये सब इसी भ्रम में कि धन ही सब कुछ है और इसके लिये सब प्रयास करने चाहिये। ये सब करते हुए प्रथम बार जब व्यक्ति अच्छे और बुरे में न्याय करता है तब मन में प्रश्न उठते हैं और मन की आवाज होती है कि यह उचित नहीं। पर शीघ्र ही इस आवाज को दबा दिया जाता है और उचित अनुचित की न्याय करने की क्षमता ही समाप्त हो जाती है। फिर केवल अपना लक्ष्य सामने होता है और उपाय के औचित्य अनौचित्य पर ध्यान देना ही बन्द हो जाता है। इससे मन की स्फुरणा पर क्या असर पड़ा? इसका चिन्तन ही बन्द हो जाता है। मन पर क्या क्या गन्दगी की परतें बढ़ती जा रही हैं इस पर ध्यान नहीं जाता। सारा ध्यान बाहर है, अन्दर झाँकने का प्रयास ही नहीं है।

मन की गन्दगी तो मन में झाँकने से ही दूर होगी। परन्तु जो व्यक्ति इतना बहिर्मुख हो गया है वह तत्काल अन्तर्मुखी भी कैसे बन सकता है? अन्तर्मुखी बनने के लिये भी प्रशिक्षण लेना पड़ेगा।

भजन-पूजन :–

कुछ व्यक्ति नियम से भजन, उपासना आदि करते हैं। इसमें भी जब तक अन्तर्मुख होने की कला नहीं आती, यह ऊपरी और बाहरी स्तर की ही क्रिया होती है। इससे मन को कुछ देर संतोष मिल सकता है परन्तु वास्तविक रूप से मन की गन्दगी दूर हो, ऐसा प्रायः नहीं होता।

प्रतिक्रमण :–

जैन विधि में प्रतिक्रमण की प्रक्रिया है जो प्रत्येक श्रावक व साधु को प्रतिदिन करनी आवश्यक है। यह प्रतिक्रमण स्वयं पर नजर डालने की प्रक्रिया है और व्यवहार व चिंतन में जो भी गलत कार्य हुए हों उनकी समीक्षा कर उन पर प्रायश्चित करना होता है। दिन भर या रात भर के कार्यों की क्रमशः सायं व प्रातः समीक्षा करने में आसानी यह होती है कि जो भी कार्य उस दिन या रात में हुए हैं उनकी याद ताजा होती है और ठीक से समीक्षा होती है। उसके औचित्य पर ऊहापोह होगी तो गलत कार्यों से कदम पीछे हटेगा और सही कार्यों पर आगे बढ़ेंगे। यह क्रिया मन के विचारों को पुष्ट करती है और शुद्ध मन ही शरीर के कार्यों का निर्देशक बनता है। यदि समीक्षा नहीं होती है तो शरीर - सुख प्राप्ति के विचार मन पर हावी होकर अशुद्ध मन ही शरीर के कार्यों का निर्देशक बन जाता है।

जब नियमित समीक्षा नहीं होती हो तो कार्यों की समीक्षा करते वक्त बहुत सी बातें याद नहीं आती। छोटी छोटी बातें स्मृति से दूर हो जाती हैं और केवल मोटी मोटी बातों की समीक्षा होती है। इससे मन स्थूल बनता है और मन की सूक्ष्म स्फुरणाओं को जान नहीं पाता। अतः प्रतिदिन प्रातः व सायं प्रतिक्रमण आवश्यक बताया है।

प्रतिक्रमण एकान्त में बैठकर बिना किसी शब्दजाल में फँसे शुद्ध मन से किया जाय और मन की गहराइयों तक पहुँचा जाय तो अवश्य लाभप्रद होता है। परन्तु परिपाटी से प्रतिक्रमण एक कर्मकान्ड भर रह जाता है। मन की गहराइयों तक पहुँचने का साधन उपलब्ध नहीं है। अतः मन की सफाई ऊपरी तौर पर ही हो पाती है।

चेतन व अवचेतन मन :–

मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि चेतन मन पूरे मन का एक छोटासा अंश है। मन का अधिकांश हिस्सा तो अवचेतन है और इस हिस्से का हमें ज्ञान भी नहीं होता। अधिकांश क्रियाएँ अवचेतन मन के आदेश से होती हैं। मच्छर को हटाने का प्रयास करते हैं तब अवचेतन मन के आधार पर ही क्रिया होती है। चेतन मन को तो पता ही नहीं कि कब हाथ उठा और दुःखद संवेदना को दूर करने लगा। अवचेतन मन में हमारे वर्षों के संस्कार भरे पड़े हैं और कई इच्छाएँ दबी पड़ी हैं। जब मौका लगता है तब पुराने संस्कार या दबी इच्छाएँ उठती हैं और व्यक्ति को अनायास इतना मजबूर कर देती हैं कि चेतन मन को सोचने या निर्णय लेने का वक्त ही नहीं देती। अतः मन का ऑपरेशन तो अवचेतन मन के

स्तर पर होना चाहिये। चेतन मन तक सीमित रहने से लाभ नहीं।

चेतन मन या बुद्धि व तर्क के आधार पर हम उचित या अनुचित का निर्णय ले भी लें तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मन के भीतरी संस्कार व निर्णय भारी पड़ते हैं और उनमें जब तक परिवर्तन नहीं होता, मनुष्य का आचरण नहीं बदलता। यही कारण है कि केवल उपदेश देने से लोगों का आचरण नहीं बदलता। मन में जब तक बात नहीं जमती, व्यक्ति उसे आचरण में नहीं लाता। मन की गहराइयों तक पहुँचने के लिये कोई नया रास्ता ढूंढ़ना ही होगा।

विपश्यना :–

इस ध्यान-पद्धति से मन को गहराइयों तक पहुँचने में किसी शब्द, रूप, ईष्ट आदि का उपयोग नहीं होता। इसमें केवल शुद्ध श्वांस के आधार पर कार्य होता है। शरीर पर जो संवेदना होती है उसे जानने और केवल जानने की प्रक्रिया होती है। किसी भी संवेदना को न अच्छा मानते हैं और न ही बुरा। जब कोई संवेदना अच्छी या बुरी नहीं तो उस संवेदना को रोकने या हटाने की बात नहीं होती। संवेदना शरीर पर उत्पन्न हो रही है। यह शरीर का धर्म है। हम केवल उस प्रक्रिया को देख रहे हैं। हम उसमें कुछ कर नहीं रहे। हम उसमें कुछ थोप नहीं रहे। केवल तटस्थ भाव से जो हो रहा है वही देख रहे हैं। जब आँख बंद कर शरीर को स्थिर कर सिर की चोटी से एड़ी तक यही क्रिया कर रहे हैं तो तटस्थ भाव पुष्ट होता है, मन का स्वभाव बदलता है। अब तक मन का स्वभाव था अच्छी वस्तु को चाहना और खराब वस्तु को हटाना। अच्छी संवेदना आई तो खुश होकर उसी संवेदना को पुनः पुनः प्राप्त करने की कोशिश करना। बुरी आई तो हटाने की कोशिश करना। परन्तु अब मन दोनों के बीच तटस्थ हो गया और भोक्ता भाव की बजाय द्रष्टा भाव आने लगा। दूसरा मूल परिवर्तन यह हुआ कि अब तक शरीर उन संवेदनाओं को देखता और चाहता था जो इन्द्रिय-जनित थी जैसे अच्छा रूप, शब्द, स्पर्श आदि। अब संवेदना वह देखी जा रही है जो मूलतः इंद्रियग्राह्य नहीं है। शरीर के अन्दर की धड़कन या फड़कन, दबाव या भारीपन, खुजलाहट या सुरसुराहट यह सब बन्द आँख से मन के जरिये जानी जाती है। मन के केन्द्रित होने पर मन के भागने और बहिर्मुखी होने का जो स्वभाव है उस पर भी रोक लगती है। इस तरह धीरे धीरे मन की गहराई तक पहुंचते हैं और मन के संस्कार स्वतः शरीर पर संवेदना के रूप में उभर कर आने लगते हैं और संवेदना के रूप में ही निकल भी जाते हैं।

अब हम मन को देखने लगे। मन की स्फुरणाओं को जानने लगे। बुद्धि के स्तर पर नहीं, अनुभव के स्तर पर जानने लगे। अब हम स्वयं अनुभव करने लगे कि जब जब क्रोध करते हैं मन व्याकुल होता है और शरीर पर अप्रिय संवेदना होती है। जब जब अच्छा कार्य करते हैं या अच्छे विचार आते हैं, अच्छी संवेदना होती है और मन सुख महसूस करता है। संवेदना पैदा नहीं की जाती। अपने आप होती है। मन केवल देखता है। व्यक्ति जब यह बात अनुभव के स्तर पर देख लेता है तो फिर मन को व्याकुल करने का काम क्यों करेगा? फिर वह वही कार्य करेगा जो मन को शांत करे या सुखी करे। स्वतः ही आचरण में परिवर्तन आयेगा। अब उपदेश की जरूरत नहीं। क्योंकि वह स्वयं देख रहा है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है। अब वह स्वयं निर्णायक है और जो भी निर्णय करेगा अच्छा ही करेगा। यही मनुष्य के आन्तरिक परिवर्तन का मार्ग है। अन्तर में परिवर्तन होने पर बाहर का परिवर्तन स्थायी होता है। जब यह प्रक्रिया केवल बाहरी होती है तो या तो वह अस्थायी होती है या केवल ऊपरी तौर की सजावट।

जब मन साफ करने का साधन मिल गया तो उसका उपयोग कब कब करें? उत्तर स्पष्ट है जैसे शरीर को सवेरे शाम दोनों वक्त साफ करते हैं वैसे मन को दोनों वक्त साफ करना ही चाहिये। इसके अतिरिक्त जब भी गन्दगी आ जावे तब शरीर की विशेष सफाई भी करते हैं वैसे ही मन का जब कोई विशेष विकार जागे, उसी वक्त मन की सफाई आवश्यक है। मन में क्रोध जागा तो उसी वक्त उसको देखना शुरू कर दें – क्रोध गायब और मन भी साफ। इसके लिये वक्त की कोई पाबन्दी नहीं। जब भी विकार आया तत्क्षण सफाई आवश्यक है। गन्दगी का ढेर इकट्ठा हो जावे तो उसे साफ करने में भी उतनी ही कठिनाई आती है। जैसे जैसे गन्दगी का ध्यान आवे वैसे वैसे हटाते चलें तो नया ढेर आना बन्द होगा और पुरानी सफाई होने लगेगी। यदि नयी गन्दगी ज्यादा आ रही है और साफ नहीं हो रही है तो पुरानी की सफाई का मौका ही नहीं मिलेगा। अतः नयी गन्दगी बंद करें अर्थात रोक लगाएँ और पुराने की सफाई करें तो मन निर्मल होता जायेगा, अपने स्वभाव में आयेगा और **स्वभाव** में रमण ही धर्म है। स्वभाव में रहने से ही मन व तन दोनों स्वस्थ रहेंगे। स्व में स्थित होना ही **स्वस्थ** होना है।

एक बार प्रक्रिया सीख लें फिर स्वय ही इसका प्रयोग करें तो मन शुद्धि का सीधा व सरल उपाय हाथ लगेगा, इसमें कोई शंका नहीं है। इसमें किसी संप्रदाय में अपने आप को परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं। यह प्रक्रिया संप्रदाय निरपेक्ष है। समय रहते समय निकालें और इसका रसास्वादन करें। इसमें सबकी स्वस्ति, मुक्ति और मंगल निहित है।

शिक्षा-सचिव, जयपुर

(राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिव श्री रणजीत सिंह कूमट विपश्यना के कई शिविरों में भाग लेकर लाभान्वित हो चुके हैं और चाहते हैं अधिकाधिक लोग इसका लाभ उठाएं –सं.)

(दैनिक समाचार पत्र 'राजस्थान पत्रिका' के १९ अप्रेल के रविवारीय संस्करण से साभार!)

साधकों के उद्‌गार

नासिक के जी. जे. धन्डारे अब तक पांच शिविरों में भाग लेकर आभार व्यक्त करते हुए लिखते हैं, "आप महाकारुणिक भगवान गौतम बुद्ध की लुप्त हुई विपश्यना विद्या को भारत वापस

लाए इसके लिए सभी विपश्यी साधक-साधिका आपके बहुत ऋणी हैं। किसी साधु की प्रेरणासे दिसम्बर ८४ में इगतपुरी में शिविर करने का सौभाग्य मिला था। अनोखी विद्या हाथ लगी। दस दिनों में कर्म संस्कारोंके क्षीण होने से बहुत हल्का और रोमांचित हुआ। उसके बाद शीघ्र ही दुबारा शिविरमें शामिल हुआ तो इस विद्या की तकनीक ठीक से समझ पाया। आज भारत की जनता में जातीयता, गुंडा-गरदी ,बलात्कार, जीव-हिंसा, दगाबाजी, बेईमानी, छल-कपट का जो माहौल है वह इस साधना के अभ्यास से दूर होकर सचमुच ब्राह्मी सुख की अनुभूति हो सकेगी।

आज का समाज भगवान बुद्ध की इस कला से अनभिज्ञ है इसलिए मनचाहा जीवन जीकर अपने लिए दुःखोंका ही सृजन कर रहा है। दुःखोंसे मुक्त होनेकी यह कला किसीने भी नहीं सिखाई। मैं भी चमत्कार एवं मूर्तिपूजा में खिंचा जा रहा था। परमेश्वर की खोज बाहर कर रहा था। अपने कर्म सुधारने की ओर ध्यान ही नहीं था इसलिए दुःखों का पहाड़ ही बन रहा था।

बुद्ध की वास्तविक शिक्षा समझ में नहीं आयी थी। अब तो अधिक से अधिक शिविर करने का विचार है।

❀

चित्रपट – "सत्य की खोज"

भारत सरकार के 'फिल्म डिवीजन' द्वारा धम्मगिरि पर गत दिसम्बर ८६ – जनवरी ८७ में आयोजित **विपश्यना सेमिनार** के अवसर पर एक फिल्म तैयार की गयी, जिसका नाम रखा है– **सत्य की खोज**। लगभग १४–१५ मिनट चलने वाली यह फीचर फिल्म आगामी १५ मई को प्रकाशित होकर एक सप्ताह तक भारत के सभी छविगृहों (सिनेमाघरों) में प्रदर्शित होगी। संभव है बुद्ध-पूर्णिमा के अवसर पर १३ मई को रात को टेली-कास्ट द्वारा पूरे भारत में दिखायी जाय।

❀

दोहे धरम के

शुद्ध धरम के पंथ पर, चले भरे उत्साह।
संकट सारे दूर हों, मंगल जगे अथाह॥

सहज सांस को देखते, चित अविचल हो जाय।
चित्तुओं की चित्त-चिता, प्रतिपल बुझती जाय॥

कदम कदम बढ़ता रहे, विपश्यना के राह।
जीवन के दुख मिटे, सुख का बहे प्रवाह॥

निरमल चित पर प्यार की, लहरें उर्मिल होय।
दूर होय दुर्भावना, बहु विधि मंगल होय॥

बाल्यकाल में धरम का, पावन पथ मिल जाय।
सारा जीवन सुखद हो, मंगल से भर जाय॥

युवाकाल में धरम की, जागे अमित उमंग।
तो जीवन में बह चले, प्रबल बोधि की गंग॥

दूहा धरम रा

सम्प्रदाय को संखियो, जातपांत को झैर।
भोलो गटकातो रवै, कठै खेम? कित खैर?

द्वेस द्रोह दुरभाव को, उमड़ै अन्तर ज्वार।
अपनो ही अनरथ करै, खोल नरक का द्वार॥

द्वेस जग्यां दुख जागसी, बौद्ध हुवै या जैन।
द्वेस छुट्यां ही दुख छुटै, मिलै सांति सुख चैन॥

सुख छावै, संताप को मिटज्या नाम निशान।
धरम जगै तो पुण्य सूं, पुलकित होज्या प्राण॥

मिटै हियै की काळिमा, उजळो हुवै उजास।
अन्तर मँह रौनक जगै, झिलमिल धरम प्रकास॥

विपस्यना सुखदायिनी, के भिक्खू के भूप।
अंग अंग प्यारी लगै, ज्यूं स्याळै की धूप॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष ८६
वैशाख पूर्णिमा * मुद्रण स्थान : विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. दूरभाष : ७६, १७६ * May 87

वार्षिक शुल्क रु. १०/–
आजीवन शुल्क रु. १००/–

'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/87

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)